शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 8
Issue 2
15 July, 2017

साहित्य और दर्शन : मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में

बीज शब्द :

मानवतावाद, साहित्य, भक्ति साहित्य, पुनर्जागरण, सांस्कृतिक चेतना, धर्म दर्शन, प्रज्ञानवाद, मानव स्वतंत्रता, तुलसीदास, दांते, गालिब।

प्रस्तुत पत्र साहित्य एवं दर्शन के सम्बन्धों को मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में पुनर्व्याख्या करने का सूक्ष्म प्रयास है। साहित्यिक अभिव्यक्ति का चरमोत्कर्ष न केवल साहित्य, दर्शन तथा मानवतावाद को एक दूसरे के अनुपूरक के तौर पर प्रस्तुत करता है बल्कि वे एक-दूसरे में अतिव्याप्त भी हो जाते हैं। इस विश्लेषण के अन्तर्गत यह शोधपत्र दान्ते, तुलसीदास और गालिब के उन सर्वनिष्ठ मानवीय मूल्यों पर केन्द्रित है जो स्थान और काल में भिन्न होते हुए भी विचारों से एक दूसरे को आप्लावित करते हुए दर्शन के उच्चतम बिन्दु आध्यात्म को आत्मसात भी करते हैं। इस शोधपत्र में दर्शन एवं मानवतावाद, दर्शन और साहित्य, एवं मानवतावाद तथा साहित्य के इन महानायकों के वैचारिक मतैक्य की भी स्वस्थ समालोचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह पत्र सम्पूर्ण न होगा यदि मानवतावाद के उद्‌भव, विकास एवं चिन्तन का समग्र विश्लेषण न किया जाए।

*****

सिद्धार्थ सिंह
एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (अंग्रेजी विभाग)
मदन मोहन मालवीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कालाकांकर, प्रतापगढ़।

साहित्य और दर्शन : मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में

I

मानवतावाद दर्शन की स्थापित शाखा न होकर एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, जो मानव मूल्यों व मानवीय गरिमा को केन्द्र में रखकर मानव की आत्मनिर्भरता, संवेदना, अनुभव एवं मानवज्ञान की पूर्णता को प्रकाशित करता है। यूरोपीय पुनर्जागरण में धर्म की बेड़ियों एवं वाह्य आडम्बरों को तोड़कर मानव महिमा को प्रतिष्ठित करने का जो आन्दोलन हुआ उसके मूल में तो मानव का भौतिक उन्नयन था किन्तु उसकी उच्च परिणिति पाश्चात्य साहित्य में मानव के 'स्व' की खोज एवं आत्मसाक्षात्कार से हुई मनुष्यता में ईश्वरत्व की परिकल्पना तक पहुँच दर्शन के उच्चतम शिखर को छूती है।

मानवतावाद से आशय उन सभी विभिन्न विचारों व दृष्टिकोणों से है जिनके मूल में मानव की प्रतिष्ठा, उसका सम्मान एवं प्रेम की स्वीकार्यता, उसके जीवन के समरसता पूर्ण एवं बहुमुखी विकास हेतु आवश्यक परिस्थितियों संरचना तथा अन्तोगत्वा मानव जीवन को उच्चतम मूल्य मानने का भाव हो।

दार्शनिक पृष्ठभूमि में मानवतावादी विचार प्राचीन भारतीय एवं चीनी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिपादित एवं प्रसारित किये गये किन्तु मूलत: इसकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति प्राचीन ग्रीस एवं रोम के दर्शन, कला एवं साहित्य में हुई जहाँ मानव को पूर्ण समन्वित जीव के रूप में देखा गया। इनके कलात्मक एवं साहित्यिक अभिव्यक्तियों में मानव अनुभवों को केन्द्र में रखा गया जबकि इनके पूर्व हिब्रू एवं कालान्तर में ईसाई कला एवं साहित्य के केन्द्र में ईश्वर था। यहाँ होमर के महाकाव्य इलियड जिस केन्द्रीभूत मानवीय भाव से आरम्भ होता है वह है 'क्रोध'।[1] होमर के मुग्धकारी रचना शिल्प की यह विशेषता है कि एकिलीज के क्रोध और अन्तत: हेक्टर के वध की छोटी सी कहानी में ट्राय ही नहीं, अपितु समस्त मानव जीवन के भाग्य, उद्देश्य और उसके मूल अर्थ की व्याख्या समाहित हो जाती है।

इसके विपरीत ईसाई धर्म ईश्वर-सृजित-मानव के अन्तर्भूत मूल्यों को उदात्तता प्रदान तो करता है लेकिन साथ ही उसे 'आदिपाप' (आदि पिता एडम एवं आदिमाता ईव के द्वारा ईश्वर की निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए शारीरिक संसर्ग का पाप, जिसके फलस्वरूप मानव की उत्पत्ति हुई) के भार के परिणामत: जीवनपर्यन्त प्रायश्चित की अनिवार्यता के द्वारा नियंत्रित कर कातर बनने पर विवश कर देता है।

यद्यपि मानवतावादी एवं लोकतांत्रिक मूल्य कहीं-कहीं रहस्यवाद के स्वरूप में आते तो है किन्तु मध्ययुगीन रोमन कथोलिक चर्च में 'पाप' एवं मानव की महत्वहीनता का विचार ही प्रतिपादित एवं प्रचारित होता है। मानव चर्च की मध्यस्थता की सहायता के बगैर न ही ईश्वर की उपासना कर सकता था और न ही दया प्राप्त कर सकता था।

चर्च के इस मानवन्दमनकारी एवं अधिनायकवादी तंत्र का प्रतिरोध यूरोपीय पुनर्जागरण काल (जिसका आरम्भ इटली से चौदहवीं शताब्दी में होता है) के मानवतावादी चिन्तकों पेट्रार्क, लॉरेन्जो बाला, लियोनार्डो दा विन्ची, एरासमस दान्ते इत्यादि ने करते हुए सामन्तवाद एवं रोम कैथोलिक चर्च के विरूद्ध युवाओं के अधिकारों के प्रति संघर्ष को अपनी अभिव्यक्ति दी। दान्ते (1265-1321) बोक्काचो (मृ0 1375) एवं पेट्रार्क (मृ0 1374) ने प्राचीन उत्कृष्ट ग्रन्थ के प्रति सुरूचि को परिष्कृत किया तथा जन भाषा को साहित्य का माध्यम बनाया। सिसरो और क्वीनटेलियन (लैटिन साहित्यकार) के साथ ग्रीक भाषा एवं साहित्य तथा प्लेटो और अरस्तू के कार्यों के अनुवादों ने इटली वासियों में व्यापक अभिरूचि जाग्रत की। वस्तुत: इटली पुनर्जागरण की असामयिक व बहुसर्जक मातृशक्ति के रूप में उभरता है जिससे यूरोप के अन्य राष्ट्र प्रेरणा ग्रहण करते हैं। जैकब बर्कहार्ट (Jacob Burckhardt) 1860 की अपनी कृति (The Civilisation of the Period of the renaissance in Italy) में पुनर्जागरण को एक सुस्पष्ट परिघटना मानते हैं जो इटली की प्रतिभा तथा नागर स्वतन्त्रता के मिलन से प्रसूत हुई। इसके मूल में व्यक्तिवाद था। इस व्यक्तिवाद ने मध्यकाल के धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक व्यवसाय के विरूद्ध विद्रोह कर आलोचनात्मकता, तर्क एवं इन्द्रिय बोध की सत्ता को प्रतिस्थापित किया।[2]

इटली के मानवतावादियों ने मानव को वैयक्तिक स्वतंत्रता से निहित मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखा तथा उसकी प्रतिष्ठा को एक ऐसे अस्तित्व के रूप में समर्थन दिया जो अच्छाई के प्रति स्वभावगत अभिलाषा से अनुप्राणित है; जो समग्र विश्व के प्रति क्रियाशील मनोवृत्ति रखता हो। इन मानवतावादियों ने न केवल प्राचीन उच्च साहित्य की मानवतावादी परम्परा को संदर्भित किया बल्कि आद्य ईसाईयत में प्रतिपादित विचारों को भी उद्घाटित किया जिनके अनुसार मानव की सर्जना ईश्वर के बिम्ब रूप में उसकी सदृश्यता के अनुरूप हुई है।

पुनर्जागरण की यह सांस्कृतिक चेतना धीरे-धीरे यूरोप में

राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिवर्तनों का मुख्य कारक बनी। राष्ट्रवाद का विकास, चर्च विरोधी विचारों का प्रवाह, रहस्यवाद एवं धर्मशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के रूढ़िवादी संश्रयों के प्रतिरोध की प्रवृत्तियाँ, पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार के महान सुधारवादी आन्दोलन के अग्रदूत रहे। प्रोटेस्टेंट धर्म का उदय न केवल रोमन कैथोलिक चर्च की रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह की प्रबल प्रतिक्रिया थी वरन् में मानव के व्यक्तिवाद की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की थी। चौदहवीं शताब्दी के धर्मशास्त्री जॉन वाइक्लिफ द्वारा जिस धार्मिक सुधार की प्रस्तावना लिखी गई (जिसके परिणामस्वरूप उन्हें व उनके शिष्य लोलार्ड्स को मृत्युदंड दे दिया गया) उसे चेक पादरी जान हस ने आगे बढ़ाया जिन्हें अग्निदंड दे दिया गया। चर्च की दमनकारी नीतियाँ चलती रही लेकिन धार्मिक सुधारों की यह प्रक्रिया रूकी नहीं और सोलहवीं शताब्दी में मार्टिन लूथर जैसे धार्मिक सुधारक के महानायकत्व में विमर्श एवं समालोचना के युगबोध ने जो अब तक अनभिव्यक्त रूप से अनुप्रमाणित हो रहे सत्ता एवं रूढ़िवादी परम्परा के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल फूँक दिया, चाहे वो राष्ट्रों का चर्च के विरूद्ध विद्रोह हो, तर्क का प्रदिष्ट सत्य से या व्यक्ति का ईसाई संगठनों की बाध्यता के विरूद्ध विद्रोह हो।[3]

मानव के दो सौ वर्षों के संघर्ष एवं उसके मस्तिष्क पर चर्च के क्रमशः क्षीण होते नियंत्रण ने उसके बौद्धिक स्वातन्त्र्य की आग्रहिता को और दृढ़ किया। परिणामतः तर्क ने धर्म की स्वप्रमाणिकता की दार्शनिक व्याख्या को अस्वीकार कर सत्य को स्वतंत्र एवं समदर्शी अन्वेषण से विजित करने की प्रबल धारणा का प्रवर्तन किया। स्वतन्त्र अन्वेषण का यही मनोभाव मानवतावाद का अग्रगामी रहा जिसने मानव की उपलब्धियों में उसकी अभिरूचि जाग्रत की (मानव प्रतिभा उपेक्ष्य या घृणित न होकर मानव महिमान्वित हुआ, उसकी प्रतिभा गौरवान्वित हुई, समकालीन कवियों, सुवक्ताओं एवं इतिहासकारों पर उपाधियों की झड़ी लग गयी। कला एवं स्थापत्य का मानवीकरण हुआ तथा मध्ययुगीन कला (सांसारिक परित्याग, दुःखभोग एवं मृत्यु के मनोभावों का द्योतक) को इस मानवतावादी संस्कृति, जो जीवन के उमंग, रस एवं स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति थी, के लिए रास्ता छोड़ना पड़ा।[4]

पुनर्जागरण काल के अवसान के बाद भी मानवतावाद की यह परम्परा अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी भौतिकवाद (डीडेरॉट, हॉलबक एवं हेलवेटियस) और फोयरबक के दार्शनिक विचारधाराओं में उच्चतम अवस्था में पहुँचता है। इसकी पूर्ण परणिति कार्ल मार्क्स के मानव के सामाजिक सम्बन्धों पर आश्रित अस्तित्व के चिन्तन में होती है जो की पूर्णतः भौतिकवादी एवं नास्तिक है।[5] मार्क्स का प्रभाव विश्व के पटल पर इतना व्यापक है कि चाहे वो आध्यात्मिक व धार्मिक मानवतावादी हो, सामाजिक सुधारवादी हो या राजनैतिक विचारक हो, उनके मानवतावादी विचारों को आत्मसात किये बगैर अपने विचारों को विस्तार नहीं दे सकता।

आज जिन अर्थों (भौतिक या आध्यात्मिक) में मानवतावाद का प्रयोग होता है वैसी अभिनव अभिव्यक्तियां भारतीय वाङ्मय में विपुल हैं। यदि एक तरफ प्राचीन भारतीय दर्शन मानव को लौकिक से अलौकिक महिमा प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त कर अमूर्तता की उस ऊँचाई पर पहुंचाता है, जहां वास्तविक जगत उपेक्षित हो जाता है, तो दूसरी तरफ भारतीय दर्शन की लोकायत परम्परा पूर्णरूप से मानव केन्द्रित है, यहां तक की अलौकिक सत्ता को अस्वीकार करने से भी नहीं हिचकती। बुद्ध भी अलौकिक सत्ता को अमनसिकरणीय दृष्टि से देखते हैं तथा समस्त पीड़ित जीवों की पीड़ा को कम करने तथा उनके सुख को बढ़ाने के भाव को प्रतिष्ठापित करते हैं। (आधुनिक समाजशास्त्रीय चिन्तन का सन्दर्भ भी यही है)

II

हालांकि विद्वज्जन साहित्य एवं मानवतावाद को एक दूसरे का पूरक तो मानते हैं लेकिन साहित्य में दर्शन की दखलंदाजी को साहित्य के लिए बेहतर नहीं मानते जबकि दर्शन आत्मतत्व से जुडे होने के कारण सारे प्राणियों में एकात्मकता को देखते हुए मानव की गरिमा की विशेष ख्याति स्थापित करके उसे सर्वप्राणि हिताय नियोजित करता है।

साहित्य और दर्शन के सम्बन्धों पर बात करने से पहले उन्हें व्याख्यायित करना आवश्यक है। 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्', इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत में 'दर्शन' का अर्थ होता है जिसके द्वारा देखा जाय। 'दर्शन' शब्द से वे सभी पद्धतियाँ अपेक्षित हैं जिनके द्वारा परम-अर्थ का ज्ञान होता है। प्रश्न यह है कि दर्शन सम्बन्धी जिज्ञासा का मूल कारण क्या है। यदि इस प्रश्न की गहराई में जाया जाय तो स्पष्ट होता है कि मानव के सुख और दुःख का द्वन्द्व ही दर्शन का उद्गम है। गीता में कहा गया है-

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। ५/२२

सामान्य अर्थ में कहा जाय तो दर्शन सुख एवं दुःख के योग से बने जीवन के ऐकान्तिक सत्य को उद्घाटित एवं व्याख्यायित करने

का प्रयास करता है।

साहित्य के सन्दर्भ में यदि हम कहें कि साहित्य जीवन के हर क्षेत्र को समाहित कर लेता है, यहां तक कि दर्शन को भी, तो अतिशयोक्ति न होगी। भारतीय वाङ्मय में 'कवि' शब्द की व्याख्या इसी रूप में की गयी है। वेदों में ईश्वर को कवि कहा गया है। 'कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्य: समाभ्य: (यजु0 40/8) (वह कवि (क्रान्तदर्शी), मनीषी (मन से देखने वाला), सर्वजयी और स्वयं ही उत्पन्न होने वाला है। उसने अनादिकाल से ही सबके लिए यथा-योग्य अर्थों की व्यवस्था बनायी है)। यहां 'कवि' रचयिता के सन्दर्भ में आया हुआ है। वेदों एवं उपनिषदों के ऋषि मंत्रद्रष्टा एवं कवि दोनों कहे गये है। उपनिषदों में 'कवयो वदन्ति' उक्ति की कई बार पुनरावृत्ति हुई है, जहां कवि शब्द का एक मुख्य अर्थ ज्ञान पुरूष है। 'दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति' (कठोपनिषद 1/3/15, यहां कवयों तत्वज्ञानी के सन्दर्भ में है)। यहाँ कवि द्रष्टा, यानी काल से परे जीवन के सत्य को देखने वाला, सृष्टा यानी कविता ('पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति' अर्थात इस देव के काव्य (वेद ज्ञान) को देखो, जो न कभी मरता है और न ही जीर्ण होता है- अथर्व0 10/8/32) में ही सही लेकिन एक सृष्टि का रचयिता एवं ज्ञानी जिसके पास ज्ञान की शक्ति हो, तीनों ही रूपों में व्यंजित करता है। यहाँ तक कि वैदिक कवियों का सौन्दर्य बोध उनकी एक व्यापक शक्ति की धारणा से दृढ़तापूर्वक संबद्ध है। इन्द्र के लिए ऋग्वेद में कहा गया है, -''रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'' (1/47/18) यानी वह प्रत्येक रूप में उसी के अनुरूप बन जाता है। यह वाक्यांश दार्शनिक रूप से जितना ईश्वर रूप को व्याख्यायित करता है उतना ही कवि को। कवि की काव्यात्मक शक्ति की कसौटी यही है कि वह अपने हृदय के सिंहासन को हर रूप के लिए रिक्त रखता है और हर रूप में अपने हृदय को ढाल देता है। उसका व्यक्तित्व जितना ऊँचा होगा, उतनी ही सहजता से जीवन के किसी भी रूप को अपनी शब्द-शक्ति से व्यंजित एवं समन्वित कर सकेगा। कवि भी एक दार्शनिक की भांति जीवन के रहस्यों को उद्घाटित एवं व्याख्यायित करने का प्रयास करता है, इसीलिए उसे द्रष्टा कहा गया है। दान्ते अलेगेरी, गोस्वामी तुलसीदास एवं मिर्ज़ा ग़ालिब जैसे महान कवि इसी कवि-द्रष्टा-सृष्टा की श्रेणी में आते हैं।

III

"लोरेंस में जन्मे दान्ते अलेगेरी ने संस्कृति एवं सामाजिक जीवन में पतनोन्मुख दिग्भ्रमित इटली एवं यूरोप को तेरहवीं शताब्दी में ही पुनर्जागरण की अलख थमा दी थी। कवि द्रष्टा के रूप में एक ऐसे संसार की दृष्टि करते हैं जो तत्कालीन मध्ययुगीन ईसाई रूढ़िवादी बर्बर वर्जनाओं से परे, प्रज्ञानवाद के सहारे मानवमात्र को उद्धार की रोशनी दिखाता है। दान्ते सुधारवादी आन्दोलन के महानायक हैं। दान्ते से पूर्व ऐसे किसी सामान्य व्यक्ति (जो चर्च से सम्बन्धित न हो) का उदाहरण नहीं मिलता जिसने अपने काल में ईसाई दर्शन के पूर्ण ज्ञान के साथ लेखन कार्य किया हो और वो भी रोमन कैथोलिक चर्च के रूढ़िवादी विचारों से आक्रान्त हुए बगैर।

उनकी दो मुख्य रचनाओं ''ला वीटा नुओवा'' (La Vita Nuova) और ''डिवाइन कामेडी'' (Divine Comedye) की मुख्य पात्र बीट्रिस मानव के उद्धार की प्रेरणा और प्रतीक के तौर पर स्थापित होती है।

''वीटा नुओवा'' में 31 प्रेम कविताएँ हैं जो तत्कालीन मान्यताओं और वर्जनाओं को तोड़ मनोभावों की स्वतन्त्रता दर्शाकर एक तरह से चर्च की अवहेलना करती हैं। इतना ही नहीं वह प्रेम का काव्य में प्रयोजन अपने आध्यात्मिक उद्धार के रूप में करते हैं। यहां प्रेम लौकिक धरातल से उठ अलौकिक धरातल पर यानी परमानन्द सहोदर से मिल जाता है जहां मानव अपनी गहन अनुभूति से 'अहं ब्रह्मास्मि' की स्थिति से आत्म साक्षात्कार कर लेता है।

दान्ते प्रेम के ईसाई व धर्मनिरपेक्ष तथा दार्शनिक स्वरूपों पर सीधी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रेम मानव के स्वस्थ या अस्वस्थ भाव है? क्या प्रेम की प्रकृति नारसिसस की भांति आत्म सम्मोहक है या पिगमैलियन की भांति अपनी ही कृति, आविष्कार या कल्पना में खो जाने का नाम है। प्रेम शिक्षण की वस्तु है या अनुभव की? क्या हृदय प्रेम का उत्स है या मानव कोरे पृष्ठ की भाँति है जिस पर किसी अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर होते हैं? दान्ते का यह मानवतावादी विमर्श अपने आप में अभूतपूर्व घटना है जो धार्मिक विवेचना से ऊपर उठकर जनमानस के जीवन के मुख्य भावों को अभिव्यक्त करता है। उसके सार्वजनिक (जहाँ वो नगर का राजनैतिक प्राणी है) तथा व्यक्तिगत (जहाँ अपने शयन कक्ष का नितांत वैयक्तिक प्राणी है) जीवन के मध्य उपजे तनाव को अभिव्यक्त कर दान्ते रोमन कैथोलिक सभ्यता के विरूद्ध देशी भाषा एवं स्थानीय सभ्यता की उन्नति को भी अभिव्यक्ति देते हैं।

''डिवाइन कामेडी'' मानव की इसी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक यात्रा का चरम काव्यात्मक प्रस्तुतीकरण हैं, जहां दर्शन एवं काव्य एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं, जहाँ जीवन की विभिन्न विरोधी शक्तियाँ स्वत: समन्वय स्थापित कर लेती हैं। एक भविष्य-दृष्टा के तौर पर यह कृति ''थर्ड टेस्टामेंट'' का स्वरूप

ग्रहण कर लेती है लेकिन ''ओल्ड'' एवं ''न्यू टेस्टामेंट'' की किसी परवशता के बगैर।

''डिवाइन कामेडी'' के तीनों खण्डों में दान्ते यहाँ एक तरफ जीवन-दर्शन को गहरे स्तर पर व्यंजित करते हैं वहीं ब्रीट्रिस, युलिसीज, मटिल्डा, लीह एवं राशेल इत्यादि के अतुलनीय चरित्र -चित्रण से अपने काव्यात्मक सृष्टि की शक्ति को भी उद्घाटित करते हैं। साथ ही तीनों खण्ड पापमय जीवन के स्वर्ग की यात्रा का, जीवन के विभिन्न विरोधी पक्षों का समन्वय करते हुए, एक विवरण भी प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम खण्ड 'इन्फर्नो' नरक का दृश्य है जहां पापात्माएं अवस्थित हैं। द्वितीय खण्ड 'परगेतोरियो' आध्यात्मिक शुद्धि स्थल है जहां पापात्माएं प्रायश्चित में संलग्न हैं। यहां दान्ते के मार्गदर्शन महान लातिनी कवि वर्जिल हैं। इस खण्ड में युलिसीज़ की ज्ञान पिपासा (जो 15-16 शती में यूरोपीय पुनर्जागरण का मुख्य ध्येय बन जाता है, का भी चित्रण है। युलिसीज़ सारे धार्मिक-सामाजिक बन्धनों को तोड़ ज्ञान की खोज का जोखिम मोल लेता है। उसकी ध्वनि कवि के अन्तस् की ज्वाला की प्रतिध्वनि है। इस खण्ड के अन्त में सांसारिक स्वर्ग में बीट्रिस से कवि का साक्षात्कार है जो उसकी मार्गदर्शिका बन जाती है, जैसे तुलसी के राम तुलसी के पथ प्रदर्शक बन जाते हैं।

अन्तिम खण्ड 'पैराडिसो' सौन्दर्य, प्रकाश एवं संगीत की दुनिया का दृश्य है। यह खण्ड प्रतीकात्मक रूप से उस मनो-आध्यात्मिक स्थिति का चित्रण है जहां व्यक्तित्व का समर्पण मोक्ष का उपादान बनता है जहां आत्मतत्व परमतत्व में रूपान्तरित होकर जीवन के अन्तिम रहस्य को प्राप्त कर लेता है। दान्ते अन्त में लिखते हैं ''मेरी उदात्त कल्पनाओं की शक्तियाँ यहां असफल हो चुकी थीं, लेकिन मेरी अभिलाषा एवं इच्छाशक्ति पहले से समानगति से चलने वाले पहिए की तरह अग्रसर हो रही थी उस प्रेम की तरफ जो सूरज और सितारों को गति देता है'' (खण्ड XXXIII, स्वअनुदित)। यहां जीवन के सभी विरोधी तत्वों का स्वत: समन्वय हो जाता है। इस सत्य का काव्यात्मक उद्घाटन ही कवि-द्रष्टा का कार्य है और दान्ते इसमें खरे उतरते हैं।

दान्ते की काव्यात्मक महानता एक और रूप में परिलक्षित होती है। दान्ते ने जिस तरह से अपनी 'टस्कन' (Tuscan) जनभाषा को महाकाव्य की भाषा के रूप में रूपान्तरित कर भाषा के भविष्य की सृष्टि एवं अपनी आध्यात्मिक महात्वाकांक्षा का प्रतिपादन किया, वह अद्वितीय है। जहां एक ओर वह मनुष्यत्व में ईश्वरत्व की परिकल्पना कर दर्शन को अपना स्रोत बनाते हैं वहीं उनकी रचना में सभी मान्यताएँ एवं बिम्ब विलक्षण रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं। बीट्रिस दान्ते की मौलिकता का सशक्त हस्ताक्षर है। साथ ही, वह ईसाई उद्धार की परम्परा एवं परम्परा से इतर पूर्ण रूप से विजयी मुद्रा में व्यवस्थित होती है। वह कटर सनातन पंथी ईसाई वर्जनाओं को तोड़ (सहज) मानवीय प्रज्ञानता के शिखर पर जा पहुंचती है जो अपने साथ ईसाई दर्शन की सम्पूर्ण प्रतीकात्मकता को अपनी सृष्टि-दृष्टि में समन्वित कर लेती है।

दान्ते पुनर्जागरण के मूल्यों की स्थापना करते हैं, साथ ही धर्म, समाज, दर्शन एवं समाज को एक नया आयाम देते हैं एवं बीट्रिस व्यक्तिगत अनुभूति से मुक्ति की खोज की अनवरत यात्रा का हिस्सा बन दान्ते को एक सर्वांगदर्शी कवि-द्रष्टा-सृष्टा के रूप में स्थापित करती है। दान्ते ऐसे जनकवि की संकल्पना पर खरे उतरते हैं जो अपने पूर्ववर्ती कट्टर परस्पर विरोधी विचारधाराओं (सिसली में राजा फेडरिक द्वितीय महान जो रोमन कैथोलिक चर्च के विरुद्ध था और टामस एक्विनास जो रोमन कैथोलिक दर्शन के शास्त्रीय प्रतिपादक तथा धर्मशास्त्री थे) को संश्लेषित कर संतुलित विचारों का प्रतिपादन किया।

IV

समन्वय एवं लोकमंगल की भावना गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का मूल आधार है। गोस्वामी जी ने अपने समय में अंधकार के युग में प्रेममार्गी भक्ति की जो अलख जगायी उसकी रोशनी आज हर हिन्दू घर में प्रकाशित होकर उन्हें आज भी लोकनायक बनाये हुए है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी दोनों ही उन्हें मानव समन्वयवादी कवि मानते हैं। द्विवेदी जी का कहना सटीक है कि उनका काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है (डा0 विजयेन्द्र स्नातक, 2014 177)। गृहस्थ एवं वैराग्य, भक्ति एवं ज्ञान, भाषा एवं संस्कृति, सगुण और निर्गुण तथा जीवन के हर विरोधी पक्षों की अद्वितीयता गोस्वामी जी की कवि-द्रष्टा एवं कवि-सृष्टा की उदात्तता प्रदान करती है। राम भक्ति के माध्यम से तुलसी ने मुस्लिम आक्रांताओं से आहत जनमानस की आस्था को पुन: पुष्पित पल्लवित किया, साथ ही राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के विविध आदर्शों को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत कर विश्रृंखलित हिन्दू समाज को केन्द्रित किया।

गोस्वामी जी ने अपने युग, जो भिन्न मतों में विभाजित, शोषित एवं पददलित था, के साथ-साथ अपने वाले समय के लिए जीवन के सत्य की सर्जनात्मक व्याख्या की। वे धर्म एवं

भक्ति की शास्त्रीयता के साथ काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का जहां एक तरफ प्रतिपादन करते हैं (वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि/ मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ) वहीं अपने सहज शैली में बड़ी-बड़ी बातों को साधारण भाषा में कह सकते हैं। एक तरफ तो वर्ण या भावानुकूल भाषा, अर्थ, रस, छन्द एवं मंगल को काव्य की परिभाषा में ढालकर काव्य-शास्त्रीय परम्परा में सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभरते हैं, वहीं तात्विक रूप से ब्रह्म की सत्ता एवं माया की उपसत्ता की भी व्याख्या करते हैं-

रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि।। 1/117।

वहीं दूसरी तरफ अद्वैत दर्शन के परम बिन्दु को बहुत सहजता से पाठक एवं श्रोता के हृदय में बैठा देते हैं-

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी। 7/117/1

वे निर्गुण, सगुण के झगड़े का भी निष्पादन करते हैं-

सगुनहि अगुनहि नहीं कछु भेदा।
गावति मुनि पुरान बुध बेदा।। 1/116/1

यहां तक कि अंग्रेजी रोमाटिसिज़्म या भारतीय छायावाद के सिद्धान्त, जिसके केन्द्र में कवि की सत्ता है, को भी गोस्वामी जी प्रतिपादित करते हैं-

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा।। 1/35/6

तुलसी मर्यादित श्रृंगार के कवि के रूप में अन्य कवियों को पीछे छोड़ देते है। राम सीता का वाटिका में प्रथम साक्षात्कार कराते हुए जिस अनुशासित श्रृंगार का वर्णन करते हैं, वह अद्वितीय है। साथ ही विवाह के समय सीता का अपने कंगन में राम को निहारने का बिम्ब अलौकिक हो जाता है। तुलसी का जीवन-दर्शन मानवीय प्रेम की यात्रा से मोक्ष की परिणति तक पहुँचता है।

V

जिस तरह दान्ते और तुलसीदास अपने समय की धार्मिक मान्यताओं से परे जाकर मानवतावाद एवं प्रज्ञानतावाद के माध्यम से लोकमंगल की प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं, उसी तरह ग़ालिब की कविता में धर्म से परे के जीवन दर्शन को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करती है। जिस प्रकार दान्ते ने ईसाईयत एवं तुलसीदास ने रूढ़िवादी हिन्दू परम्परा के एकांगी सिद्धान्तों का अतिक्रमण किया है। उसी प्रकार ग़ालिब की कविता हदीस के एकांगी सिद्धान्तों से ऊपर उठ जाती है और उन्हें पूरे विश्व एवं विश्वमानवता का शायर बनाती है। ग़ालिब की वंश परम्परा ईरान से समरकंद तक और फिर भारत तक की यात्रा करती है। उनके काव्य में और व्यक्तित्व में धर्म और जाति के प्रति कोई आग्रह या दुराग्रह नहीं है। सरदार जाफरी कहते है कि ''वह किसी दर्शन विशेष का निर्माता नही है लेकिन ग़ालिब में चिन्तन के तत्व और दार्शनिक प्रवृत्ति से इन्कार नहीं किया जा सकता है।''[11] वे मूलत: सूफी विचारधारा के निकट कहे जा सकते है। उनकी काव्यात्मक दार्शनिकता सूफी मत के साथ-साथ लोक प्रेम, वेदान्त दर्शन एवं भावों की उस गहन अनुभूति की परिणति है जो हर महान कवि द्रष्टा में होती है। प्रेम की दार्शनिकता के तो वे महानतम् कवि कहे जा सकते हैं। यहां तक कि कभी-कभी वे कबीर के रहस्यवाद के स्तर तक पहुँच जाते हैं-

हर चंद हर इक शै में तू है,
पर तुझ सी तो कोई शै नहीं है।

इस शेर पर अगर ध्यान दिया जाए तो स्पष्ट है कि ग़ालिब हर जगह ईश्वर को पाते हैं। ग़ालिब यह करने से हिचकते हैं कि 'खुदा' और 'बन्दा' एक ही है। शायद इसके मूल में इस्लाम है जो इस विचार को मान्यता नहीं देता। लेकिन ग़ालिब एक महान कवि-द्रष्टा की तरह इस स्थिति से विद्रोह कर उठते हैं-

कतरा दरिया में मिल जाए तो दरिया हो जाए।

यदि इस पंक्ति की तुलना हम कबीर के ''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल'' दोहे से करें तो स्पष्ट है कि ग़ालिब भी 'खुदा' और 'बन्दे' की अभिन्नता में विश्वास रखते हैं। सरदार जाफरी की टिप्पणी समीचीन प्रतीत होती है कि 'वह वहदत-ए-बुजुद (विश्वदेवतावाद, जगीश्वरवाद...) को मानने वाला था। उसने अरबी-फ़ारसी मसनवी अब्र-ए-गुहरबार में विश्व को चेतना-दर्पण (आईन:-ए-आगही) कहा है जो ब्रह्म-रूप (वज् हुल्लाह) के दर्शन का वातावरण है। न केवल यह कि मानव जिस दिशा में मुंह करता है उस ओर ''वह ही वह' नज़र आता है बल्कि जिस मुंह को मानव चारो ओर मोड़ रहा है वह खुद ''उसी'' का मुंह है।'[13]

वही ख्याल फिर उनकी एक ग़जल में शब्द पाता है- **इशरते-क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना/ दर्द का हद से**

गुज़रना है दवा हो जाना। दूसरे शब्दों में कहें कि हर 'ज़र्रे' का 'वजूद' ईश्वर की निस्सीम सत्त का ही हिस्सा है। यहाँ मानवत्व एवं ईश्वरत्व का कोई भेद नहीं रह जाता। यह मानवतावाद का चरमोत्कर्ष है। सारी सृष्टि ईश्वर की निस्सीमता की व्याख्या है, एक लीला है जिसे गहन अनुभूति के क्षणों में ही देखा जा सकता है, चाहे आंखे दार्शनिक की हो या कवि की। फ़र्क इतना है कि कवि दार्शनिक की तरह अमूर्त सिद्धान्तों से बंधकर नहीं वरन सहज ढंग से जीवन के मूर्त को दर्शन के अमूर्त से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, साथ ही वह जीवन विरोधी पक्षों में छिपी समन्वयता को उद्घाटित करता है। उर्दू काव्य में ग़ालिब इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके अलावा ग़ालिब ने दान्ते, और तुलसीदास की तरह हालाँकि महाकाव्य तो नहीं लिखा लेकिन उर्दू ज़बान को वैसी ही ऊँचाई दी जैसी दान्ते ने 'टस्कन' और तुलसीदास ने 'अवधी' को दी।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जब भी कोई कवि अनुभूति के उच्चतम शिखर पर पहुंच पाया तो उसने जीवन को एक द्रष्टा की भांति देखा। जीवन के रहस्य की भाव-भूमि पर साहित्य एवं दर्शन एक एक-दूसरे के बहुत नज़दीक आ जाते हैं। जैसे-जैसे कवि के अनुभव गहन होते जाते हैं वैसे-वैसे कविता और दर्शन एक-दूसरे मे संलिप्त होने लगते हैं। यदि साहित्य का उपादान मानव अनुभूति एवं दर्शन का विचार है तो भी महत्वपूर्ण यह है कि अनुभूति ही अंतत: विचार के रूप में व्यवस्थित होती है एवं दर्शन में भी विचार के बाद मनुष्य अनुभूति के स्तर पर पहुंचकर मानव की गरिमा को ही उद्घाटित करता है। अत: प्रत्येक महान कवि में दार्शनिक एवं प्रत्येक महान दार्शनिक में कवि का साक्षात्कार स्वाभाविक है। यदि कवि महान है, जैसे कि वेद एवं उपनिषद् के ऋषि हैं तो कविता एवं दर्शन के अन्दर को सहजता से लांघ कर कवि-द्रष्टा के रूप में उभर कर आता है। जिसकी विशिष्ट रचना शैली की शक्ति एक दार्शनिक से नितान्त भिन्न होती है। वस्तुत: दार्शनिक अनुभूति कवि की कविता को गहनता एवं आयु प्रदान करती है।

Notes:

1. The Iliad, Book I, Lines 1-6

RAGE:
Sing, Goddess, Achilles rage,
Black and murderous, that cost the Greeks
Incaluable pain, pitched countless souls
Of heroes into Hads' dark,
And left their bodies to rot as feasts
For dogs and birds, as Zeus' will was done.

2. "....Burckhardt painted his brilliant picture of the Italian Renaissance as a distinct cultural phenomenon born of marriage of Italian genius with the civic freedom of Italian cities, and characterized by untrammeled individualism, by the free play of personality in life, thought, art and letters. This individualism meant a revolt against the bondage and uniform solidarity of the medieval religious, moral, and social order, the assertion of critical reason against authority, of the senses against asceticism, of the claims of earth against those heaven."
- Douglas Bush, The Renaissance and English humanism, University of Toronto Press: Canada , 1939 (Reprint 1965¼ 18-19.

3. Marx gives a very comprehensible analysis of Luther's reformation.
He [Luther] shattered faith in authority because he restored the authority of faith. He turned priests into layman because he turned layman into priests. He freed man from outer religiosity because he made religiosity the inner man. He freed the body from chains because he enchained the heart.
(Marx, "Contribution to the critique of Hegels Philosophy of Law", in Marx, Engels, Collective Works, Vol. 3, Lawrence & Wishart: London 2010 182¼

4. See Frank Thilly, A History of Philosophy, Central Publishing house: Allahabad, 2001 261-263

5. "The criticism of religion ends with the teaching that man is the highest being for man, hence with the categorical imperative to overthrow all relations in which man is debased, enslaved, forsaken despicable being..."
(Marx, "Contribution to the critique of Hegels Philosophy of Law", in Marx, Engels, Collective Works, Vol. 3, Lawrence & Wishart: London 2010

182)

सन्दर्भ :

1. अथर्ववेद संहिता, दशम् काण्डम्, स0 पं0 श्री रामशर्मा आचार्य, मथुरा: युग निर्माण योजना, 2005

2. जाफ़री, सरदार, ''भूमिका'', दीवान-ए-ग़ालिब, मुम्बई: हिन्दुस्तानी बुक ट्रस्ट, 1958 7-51।

3. दीवान-ए-ग़ालिब, सम्पादक प्रकाश पंडित, हिन्द पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, 1996।

4. कठोपनिषद-प्रथम अध्याय, शंकरभाष्य - - - <http://webstock.in/001/-Epics-PDF/Kathopnishad-Hindi/Kathopnishad-Hindi.pdf>

5. श्रीमद्भगवत्गीता-पंचम अध्याय, व्याख्याकार स्वामी श्री अड़गड़ानन्द, मुम्बई: श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट

6. स्नातक, डा0 विजयेन्द्र, ''सगुण भक्तिकाव्य'', हिन्दी साहित्य का इतिहास, स0 डा0 नागेन्द्र, नई दिल्ली :मयूर पेपर बैक्स, 2014।

7. तुलसीदास कृत रामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर, 2005

8. यजुर्वेद संहिता- अध्याय चत्वारिंश http://vedpuran.files.wordpress.com/2011/10/yajurveda.pdf

9. Alighieri, Dante. -

La Vita Nuava (The New life¼, Translated by A.S. Kline, 2001.

<http://campbelingold.com> Divine Comedy, Translated by Arthur John Butler, MacMillan and Co.: London (1894).

10. Bush, Douglas. The Renaissance and English humanism, University of Toronto Press: Canada , 1939 (Reprint 1965)

11. Homer. The Iliad, Book I

https://www.poets.org/poetsorg/poem/iliad-book-i-lines-1-15

12. Marx, Karl. "Contribution to the critique of Hegels Philosophy of Law", in Marx, Engels, Collective Works, Vol. 3, Lawrence & Wishart: London 2010.

13. Thilly, Frank. A History of Philosophy, Central Publishing house: Allahabad, 2001.

An Honest Warning To Research Contributors

The writing of research papers is a very common phenomenon in the academic world. But now-a-days this is done without giving due care to the norms and ethics accepted for writing research papers. Even a small mistake spoils the reputation of the concerned person. We come across several stories of the violation of accepted norms. With the help of Electronic Editing, it is very common to cut ,copy and paste in Research article/ thesis formation without giving a reference of the original work. We should always keep in mind that it is not a fare practice. While reviewing, sometimes we come across such mallpractices. Such stories suggest that research scholars must be very honest and sincere in their work and must give proper attribution in case they iQuote any content from any original work.

Editor